International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 02-07-2021, Accepted: 16-07-2021, Published: 30-07-2021
Volume 7, Issue 4, 2021, Page No. 118-126

भीष्म साहनी की सृजनशीलता

डॉ. स्नेहलता दास

सहायक प्रोफेसर, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, भुबनेश्वर, ओड़िशा, भारत

सारांश

भीष्म साहनी प्रगतिशील धारा के प्रमुख रचनाकार हैं। उनकी यह प्रगतिशीलता यथार्थ की भावभूमि पर अवलंबित हो कर आधुनिकता का वरण करती है। सहज एवं सरल व्यक्तित्व वाले भीष्म साहनी ने अपनी रचनाओं में जीवन यथार्थ का बखूबी चित्रण किया है। उनकी रचनाओं में जीवन से जुड़ी अंतर्विरोध एवं संघर्षशीलता का चित्र भी है एवं जीवन के प्रति सौंदर्य-दृष्टि भी है। उन्होंने अपनी सृजनधर्मिता को वैयक्तिकता के सीमाओं में आबद्ध न रख कर जन सामान्य के पीड़ा को अपनी लेखकीय संवेदना का आधार बनाया। उनकी यह जनवादी चेतना मानवीय करुणा एवं मानवीय मूल्यबोध व नैतिकता के रूप में उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है।उनकी रचनाओं के विषय सामान्य जन जीवन से संबंधित हैं। एक ओर उन्होंने शोषण एवं कुप्रथा जैसी सामाजिक विषमताओं का खुल कर उपेक्षा की तो दूसरी ओर व्यक्ति के स्वतंत्रता एवं अधिकार के लिए भी आवाज उठाई। साहनी जी ने 'झरोखे', 'कड़ियाँ', 'तमस', 'बसन्ती', जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त 'भाग्यरेखा', 'पटरियाँ', 'पहला पाठ', 'भटकती राख', जैसी कहानी संग्रहों का सृजन किया है। हिंदी नाटकों के क्षेत्र में भी उन्होंने 'हानूश', 'कबीरा खड़ा बाजार में', 'माधवी' जैसे कृतियों का अमूल्य दान दिया है। उनका सम्पूर्ण रचना संसार मानवतावादी दृष्टिकोण से यथार्थ का पुनरावलोकन है। उनकी यही यथार्थ दृष्टि उनकी रचनाओं को सार्थक एवं सोद्देश्य बनाती है।

मूल शब्द: प्रगतिशील कथाकार, जनवादी चेतना, आधुनिकता, सामाजिक नैतिकता, मानवीय मूल्यबोध

प्रस्तावना

साहित्य शास्त्र और कला-चिंतन में सृजनशीलता की प्रकृति और प्रयोग पर बराबर चर्चा होती रही है। स्वच्छंदतावादी इसमें अधिक मुखर हैं। वे कहते हैं- घटना से स्वानुभूति जगती है। कवि पहले वियोगी होता है। फिर उसकी 'आह' से 'गान' या कविता अनायास चुपचाप बहती चली आती है। कवि कविता नहीं लिखता, वह तो अपने आप लिख जाती है। कभी-कभी 'पीड़ा' घनीभूत होकर मस्तक में 'स्मृति-सी' छायी रहती है, फिर अवसर पाते ही 'आँसू' बनके अनायास बरस जाती है। कविता बन जाती है। कवि की वेदना विश्व-वेदना बन जाती है। अतः सृजनशीलता का मूल-स्रोत है वेदनानुभूति और उसकी प्रकृति है, सहज, सरल, प्रखर संवेदनशीलता। अर्थात् संवेदनशील कवि के व्यक्तित्व-भाजन से अनुभूतियाँ जगती, पकती और संचित होती रहती हैं। संवेदन, स्वानुभूति और संप्रेषण कला-सृजन की प्रक्रिया हैं।

प्रगतिशील कथाकार भीष्म-साहनी के विचार भी लगभग ऐसे ही हैं। वे एक जगह कहते हैं- "यह सच है। उपन्यास की रचना लेखक की कलम नहीं करती, उसका मस्तिष्क नहीं करता। उसका आत्मविह्वल हृदय करता है।" भीष्म साहनी मानते हैं कि वे स्वयं पहले

रचना के पीछे त्रासदी को भोगते हैं। भोगे हुए उस यथार्थ पर वेदना मंथन चलता है। वास्तव जीवन की परिस्थितियों से कच्चे माल का चुनाव होता है उसमें कल्पना-रसायन का संयोग होता है। तब कृति बनती है। अपने सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'तमस' की रचना को लेकर भीष्म साहनी ने अनेक सवालों के जवाब देते हुए अपनी रचना-प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। बचपन में 1926 को एक दंगा देखा था। अनाज गंज जला तो आग आसमान को छूने को लगी थी। 1942 के आंदोलन के साथ हिंदू-मुसलमानों में विद्वेष बढ़ने लगा। 1947 ई. में रावलपिंडी के भयानक दंगे संवेदनशील वयस्क भीष्म के सामने हुए। इनमें भी दंगे की आग आसमान को छू रही थी। मारकाट, चीखपुकार, आगजनी, स्त्रियों पर अत्याचार के दृश्य भीष्म ने अपने आँखों से देखे।

बरसों बाद बंबई के पास भिवंडी में दंगा हुआ। भीष्म वहाँ गए। खंडहरों में धधकती आग की लपटें, इक्के-दुक्के लोग, सूनी गलियाँ, बिखरे अधजले सामान, चुप्पी, वीरानी में गिद्ध-कुत्तों का हुजूम। अतीत के चलचित्र आँखों के सामने आने लगे। रोंगटे खड़े करनेवाले शोरगुल, धर्मांध नारे, आर्त्त चीत्कार कानों में बजने लगे। सामने की त्रासदी ने स्मृति की त्रासदी ने दिल को दहला दिया। फिर वे दिल्ली लौट आए। भिवंडी पीछे छूट गया। वहाँ की सूनी गलियाँ विस्मृति में खो गईं। जो यादें जगी थीं, वे भी अवचेतन में पहुँच गईं।

मगर एक दिन जब कलम उठाई और कागज सामने रखा तो अचानक रावलपिंडी के दंगों के दृश्य आँखों के आगे नाचने लगे। कांग्रेस का वह दफ्तर, वहाँ के साथी लोगों के चेहरे योगी रामनाथ, बख्शीजी, बालीजी, हकीमजी, अब्दुल अजीज, मेहरचंद आहूजा जनरैल, मास्टर अर्जुनदास; न जाने कितने लोग। एक एक की आवाजें और खोहा खालसा का स्त्रियों की लाशों से पटा हुआ कुआँ। मरी पत्नियों की लाश देखकर चीखते-बिलखते वे पुरुष। भीष्म को उद्वेलित करनेवाला वह 'दृश्य श्रव्य मानस यंत्र' चलने लगा तो लेखक की कलम भी चल निकली। 'तमस' उपन्यास लिखता गया। भीष्म कहते हैं- "यादें ही कलम चलाती हैं। संयम, धैर्य कलम नहीं चलाते। अंदर की छटपटाहट चलाती है।" भीष्म मानते हैं कि रचना आगे बढ़ती है तो अपना स्वतंत्र अस्तित्व ग्रहण करने लगती है। वास्तविक जीवन की सच्ची घटनाएँ, वास्तविक जीवन से उठाए गए पात्र उपन्यास की माँगों के अनुरूप ढलते चलते हैं। यथार्थ और कल्पना घुलमिल जाते हैं। वास्तविक और काल्पनिक में फर्क नहीं रहता। दोनों का विश्वसनीय होना जरूरी है। भीष्म का विचार है- "कभी-कभी वास्तविकता का यथावत् चित्रण इतना प्रभावशाली नहीं होता जितना कल्पना की मदद से किया गया चित्रण। कल्पना की उड़ान का मतलब मनगढ़ंत चित्रण नहीं है। कथानक के विकास के अनुरूप ही आपके पात्रों का व्यवहार होगा और आपकी कल्पना के द्वारा नई-नई स्थितियों का आविष्कार भी। बेशक वास्तविकता की जानकारी आधार का काम करेगी। पर उसके अंदर पायी जाने वाली सच्चाई का उद्घाटन कल्पना के द्वारा होगा।" 'तमस' का मुराद अली, नत्थू, उसकी पत्नी, अंग्रेज कमीशनर रिचर्ड और उसकी पत्नी लिजा आदि काल्पनिक पात्र तो यथार्थ से अधिक सच्चे लगते हैं। पाशोवाला प्रसंग काल्पनिक है। विश्वास नहीं होता कॉलरिज ने बहुत पहले कहा था कि कल्पना बेतरतीब अनुभवों को संगठित और संतुलित करती है तो दूसरी कल्पना कलाविधायिनी सृजन-शक्ति है। भीष्म भी कल्पना का काम संतुलन करना मानते हैं। अतः उनकी रचनाओं में उनकी सर्जनशील कल्पना-शक्ति कार्यरत है।

भीष्म साहनी यथार्थवादी हैं, मार्क्सवादी हैं, प्रगतिशील लेखक संघ के कार्यकर्ता रहे हैं। उनकी प्रतिबद्धता है, मान्यताएँ हैं परंतु वे लेखक की कलात्मक सृजनशीलता पर हावी नहीं होतीं। उनका व्यक्तित्व सर्वत्र विद्यमान है। लेकिन प्रच्छन्न, निःस्संग, तटस्थ रूप में। अनेक स्थानों में लेखक वाचक (नेरेटर) बन जाता है। परंतु वहाँ वर्णन वस्तुनिष्ठ यथार्थ के आधार पर चलता है, निर्वैयक्तिक होता है। अतः उनकी रचनाओं में व्यक्तित्व का न तो मुक्त अभिव्यंजना है और न

पलायन ही। उनका मनोहारी रूपांतरण है जो क्षेत्रीयता को सार्वदेशिक, सांकालिक यथार्थ को सार्वकालिक के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। व्यक्ति की अनुभूति सार्वजनीन हो जाती है। 'पश्चिमोत्तर भारत' संपूर्ण भारत बन जाता है। उनके पात्र वर्ग-प्रतिनिधि होकर भी व्यक्ति वैचित्र्यों से विशिष्ट; बनते हैं। वे सामान्य मनुष्य की सभी सबलताओं और दुर्बलताओं की झाँकियाँ प्रस्तुत कर पाते हैं।

सब जानते हैं कि भीष्म का व्यक्तित्व सहज, सरल, शालीन और संवेदनशील है। वे अपने जीवन में आदर्शों को यथार्थ के स्तर पर जीनेवाले मानववादी थे। इसलिए स्वाभाविक जीवन को अपनी रचनाओं में उतार पाते थे। कुरूपताओं के साथ सहज मानवीय संवेदनाओं को प्रतिफलित करते थे। यथार्थ के प्रति यह सौंदर्य-दृष्टि उसे आकर्षक और आत्मीय बनाती है। उनके वर्णनों में जीवन का अंधकार पक्ष है तो मानवता की झलकें भी हैं। जीवन के अंतर्विरोधों, विसंगतियों, कुंठाओं, कुरूपताओं के साथ स्वाभाविक जिजीविषा, संघर्षशीलता, कोमलता के चित्र एक साथ होने से उनमें सजीवता, सार्थकता, सोद्देश्यता भी रहती हैं। ये विशेषताएँ पात्र को भागने को नहीं बदलने की प्रेरणा देती हैं। फलस्वरुप भीष्म की सृजनशीलता अनूठी बन पाती है।

भीष्म की सृजनशीलता उनके प्रखर इतिहासबोध द्वारा संचालित होती है। क्योंकि वह वैज्ञानिकता, धर्मनिरपेक्षता, प्रगतिशीलता, आधुनिकता और जनतांत्रिक मूल्यों पर प्रतिष्ठित है। भारत अपनी विशालता के साथ विविधता का पोषक रहा है। इस देश में भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, नस्ल के लोग साथ-साथ रहते आए हैं। आर्य, अनार्य, द्रविड़, शक, हूण, पठान, मुगल सब उसी के देह में लीन हुए हैं। इसलिए इसकी संस्कृति बहुवादी है। 'वसुधैव कुटुंबकम', 'सर्वेभवंतु सुखिनः' जीवन के मंत्र हैं। परंतु भीष्म ने लक्ष्य किया है कि भारतीय विचारों में उदार और आचारों में कट्टर होते गए हैं। हिंदू-मुसलमान साथ-साथ रहते हुए भी धार्मिक संकीर्णता, सांप्रदायिकता, कट्टरता के शिकार रहते हैं। उनके व्यवहार में वैमनस्य, अविश्वास और विद्वेष पैदा हुआ है। इसीका फायदा उठाकर विदेशी अंग्रेज शासक उनमें फूट डाल राज करते रहे और अंततोगत्वा देश को विभाजित कर गए। भीष्म साहनी ने खूब अंग्रेजी पढ़ी है। वे जानते हैं कि भारत के लिए अंग्रेज-राज वरदान नहीं था। शासक हर बात में श्रेष्ठ और शासित निकृष्ट नहीं होता। वे अंग्रेजों की 'श्रेष्ठग्रंथि' और भारतीयों की 'हीनग्रंथि' का विश्लेषण करते हैं। उन्होंने अपने शहर रावलपिंडी के तीन हिस्से देखे हैं। एक अंग्रेज फौज की छावनी (थोड़ी दूर देशी सेना का शिविर भी)। दूसरा 'सदर इलाका', 'सिविल लाइन्स' यानी अंग्रेजों का आवास। यहाँ ठाठ कि जिंदगी है। अंग्रेजी सिनेमा हॉल यहीं है। कोई 'नेटिव' (देशी) आदमी घुस गया तो पीटता है, मरता है। तीसरा हिस्सा वह भारत है, जहाँ की बस्तियों में, गलियों में, तंग मुहल्लों में हर जाति के, हर धर्म के लोग एक साथ रहते हैं। अमीर-गरीब, मजदूर-महाजन सब हैं। अनेकता है तो भाईचारा भी। झगड़े होते हैं तो सुलह भी होती है। भीष्म इस जन-समाज के सारे द्वंद्वों, अंतर्विरोधों और विसंगतियों की तस्वीरें सामने रखते हैं। मार्क्सवाद, द्वंदात्मक भौतिकवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद की व्याख्या करते हैं। क्रमिक इतिहास को समझते हैं। 1942 के बाद से खास तौर पर विदेशियों की कूटनीति, साम्राज्यवादी कुचक्र, उदासीन शासन के सामने जनता की नासमझी, न्यस्त स्वार्थियों की चालबाजी और धर्मांधता ने मिलकर चारों ओर तमस फैला दिया है।

इसलिए डॉ. बच्चन सिंह को 'तमस' में कुछ नया नहीं मिलता, अंग्रेजों को दंगों के लिए जिम्मेवार ठहराना 'सरलीकरण' लगता है तो क्या किया जाय? भीष्म सर्वहारा के पक्षधर हैं, सामान्य जनों में जिजीविषा, संघर्ष-प्रवृत्ति, परिवर्तन की आकांक्षा को साफ देख पाते हैं। निम्न-मध्य, शोषक-शोषित, बुर्जुआ-प्रोलेतिरेयत दोनों वर्गों की सफलताओं-दुर्बलताओं के चित्र सामने रख पाते हैं। उनका तथ्यात्मक, निरपेक्ष, पारदर्शी वर्णन उनकी सर्जनशील कलात्मकता को परिपुष्ट करता है। अमरकांत ने ठीक कहा है- "संवेदना के धरातल पर स्थितियों का ऐसा निर्मम विश्लेषण दुर्लभ है। भीष्म जी

इस रचना (तमस) में एक द्रष्टा और सजग प्रहरी के रूप में सामने आते हैं। स्वतंत्र भारत में बारबार हो रहे दंगे भीष्म की ऐतिहासिक चेतावनी को प्रमाणित करते हैं। संपन्न परिवारों में फिरभी मेलजोल रहता है, मगर अमीर-गरीब में अनबन रहती है।

'झरोखे' (1967) और 'कड़ियाँ' (1970) में साहनी ने भारतीय धार्मिक और सामाजिक अंतस्संबंध को मनोविज्ञान की कसौटी पर परखा है। आत्मसमीक्षा की दृष्टि से 'झरोखे' में से हिंदू आर्यसमाजी परिवार के जीवन चक्र को देखा है। उच्च विश्वजनीन विचार भी संकीर्णता और रक्षणशीलता द्वारा कलुषित हो गए हैं। भारतीय मध्यवर्ग धर्म पर बड़ा विश्वास रखता है। मगर उसका धर्माचरण, संध्या-हवन, पूजा-पाठ श्रद्धाविहीन होता गया है। जड़ कर्मकांड ढोंग-पाखंड बन गया है। उसमें अंतर्विरोध हैं, विसंगतियाँ भरी हैं। इसीसे धर्मांधता फैलती है। अविश्वास, असहनशीलता और वैमनस्य पनपता है। बचपन से संस्कार पड़ते हैं। बच्चे, नौकर, स्त्रियाँ सब शामिल हैं। 'कड़ियाँ' नारी-जीवन के द्वंद को उजागर करती हैं। पुराने संस्कारों से बँधी प्रमिला पातिव्रत्य का निर्वाह करके ठगी जाती है। आर्थिक पराधीनता, लाचार जीवन-शैली और निरंकुश पुरुष का अत्याचार पारिवारिक जीवन को विषमय बनाता है। फिर भी प्रमिला के संघर्ष में आधुनिकता का प्रभाव है। भीष्म इस संघर्ष से सुखी हैं। उनका सृजन ऐसे संघर्ष को बढ़ावा देता है, उससे परिवर्तन को अंजाम देता है।

'तमस' में यथार्थ के बहुविध आयामों का उद्घाटन हुआ है। यह देश विभाजन की विभीषिका का दस्तावेज है। एक संकटपूर्ण स्थिति की पृष्ठभूमि में विभिन्न धर्मों, वर्गों और विचारधाराओं के लोगों की प्रतिक्रिया और उनके कारनामें पेश हुए हैं। रिचर्ड उपनिवेशवादी शासकों का प्रतिनिधि है। उसमें शासित उपनिवेश के लोगों का, उनकी संस्कृति का मखौल उड़ाया गया है। उपनिवेशवादी सोच की उपज भयानक सांप्रदायिकता की ऐतिहासिक व्याख्या के साथ, उससे उत्पन्न त्रासदी के भयानक परिणामों के प्रामाणिक चित्र भी हैं। उसमें नफरत के, फूट सियासत के, हुकूमत की हैवानियत के, दानवी हिंसा और कहीं-कहीं कोमल मानवता के दृश्य अंकित हैं। खोयी हुई मानवता की खोज भी चल रही है। लगता है 'बसंती' (1980) अधिक सशक्त, कलात्मक और सृजनशील व्यक्तित्व की पैदाइश है। इसमें जनसामान्य की रोजमर्रा की जिंदगी है। महानगर बन रहे हैं। उच्च और मध्यवर्ग के लिए मकान और सड़कें बनती हैं। गाँवों के गरीब सूखा, अकाल, बीमारी, बेरोजगारी, भुखमरी से त्रस्त होकर भागकर आते हैं, किसी सड़क के किनारे या वीरान जगह पर झुग्गी-झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। पूँजीवादी अर्थतंत्र उनको उजाड़ता है, लेकिन उनमें बसनेवाले सर्वहारा-वर्ग से सेवा लेता है। उन्हें चूसता है। श्रम बिकता है। सामाजिक संरचना भी टूट रही है। 'बसंती' में इस परिवर्तन का कलात्मक चित्रण है। बसते-उजड़ते झोपड़े, टूटते-बनते रिश्ते, बाह्य परिस्थितियों के अनुरूप मानसिकता में परिवर्तन, टीवी का प्रभाव, स्त्री जागरण आदि अनेक समस्याएँ एक साथ उठती हैं। निम्न और मध्यवर्ग की जिंदगियाँ आमने-सामने हैं। शोषण-प्रक्रिया उजागर होती है। सर्वहारा की जीजीविषा और साहस, उसकी विवशताएँ, बसंती जैसी नई नारी का आविर्भाव, पुरुष की निरंकुशता के खिलाफ उसका मुकाबला, त्रासदी जीवंत हो उठते हैं। आश्चर्य नहीं होता कि भीष्म की 'बसंती' प्रेमचंद की धनिया से कितना आगे बढ़ गई है। धनिया गरीबी, परिवार और परंपराओं के बंधनों में बेबस है उसकी लड़ाई बिखर जाती है। परंतु बसंती पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण तंत्र को कुंठित का आत्मनिर्भर, स्वतंत्र व्यक्तित्व अर्जन करके जगमगा उठती है। बसंती चिरस्मरणीय बन जाती है।

'सय्यादास की माड़ी' (1988) सिक्खों की अमलदारी को तोड़कर अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार की कथा है। भारतीय समाज पर अंग्रेजी जीवनशैली का प्रभाव, मनोवृत्तियों में परिवर्तन को दिखाया गया है। 'कुंतो' में नारी जीवन की विडंबनाओं का चित्र है बदलते नारी-पुरुष के रिश्ते शरतचंद्र का स्मरण कराते हैं। वहाँ सूक्ष्मता और वायवीयता है तो 'कुंतों' और 'नीलू

नीलिमा नीलोफर' में उच्च वर्ग की नारियों के मानसिक तनाव हेतु पारिवारिक विघटन और सांप्रदायिकता के बढ़ते विद्वेष निराशाजनक हैं।

भीष्म साहनी की सृजनात्मकता एक मनोहारी आयाम है- उनके चित्रात्मक वर्णनशैली। वस्तुनिष्ठ तथ्य, युक्तिसंगत प्रमाण, विचारों की सुशृंखलता, कल्पना का सही योग, सूक्ष्म मानवीय भावनाओं की झाँकियाँ, छोटी या बड़ी हर घटना की बारीकियाँ उनके रचना-संसार के चित्रशाला का आनंद देती हैं। एक अद्भुत कथा-रस बहता है। अपने जीवन के विश्वसनीय चित्र देख पाठक आत्मीयता का अनुभव करता है। लगभग सभी कथाओं में लेखक का वाचन (नेरेशन) सर्वसम्मत वाचन बन जाता है। क्योंकि उसमें मानवता का एक अंतःस्वर गूँजता है, जो अविश्वास में विश्वास, निराशा में आशा का संचार करता है। इसी हेतु भीष्म का यथार्थ जीवंत हो उठता है, प्रेरणादायक बनता है।

भीष्म का सर्जनशील शिल्पविधान सरल, सुगम, संप्रेषणक्षम और मनोरम होता है। शैली स्वयं सर्जक का प्रतिबिंब होती है न! वर्णन शैली सहज निराडंबर है। शब्दभंडार व्यापक और परिचित, कहीं गाँव के शब्द हैं, कहीं पंजाबी छौंक है तो कहीं उर्दू के लफ्ज़। राजस्थानी हरियाणवी छींटे। संप्रेषण को परिपुष्ट करने की भाषाशैली। परिश्रम से बनी प्रवाहशील और मौलिक। यह हिंदी हिंदुस्तान की भाषा बन गई है। कथा कहने की आत्मीयता। आरंभ हुआ तो अंत तक खींच लेने की क्षमता-उपन्यास हो कहानी हो या नाटकीय संवाद-सर्वत्र। रामदरश मिश्र वर्णनात्मक शैली की शक्ति-अशक्ति की बात उठाते हैं। पर भीष्म की सृजनशील सादगी में सब डूब जाती हैं। अल्पोक्ति, मित्तकथन, वाचक का सटीक प्रक्षेपण सब मिलकर एक अद्भुत कथावाचन शिल्प का नमूना पेश करते हैं।

भीष्म साहनी की सृजनशीलता जीवन यथार्थ के परिशिलन में निमग्न है। उसकी प्रेरणा मध्य और निम्न वर्गों का जीवन है। उसका चरित्र द्वंदात्मक भौतिकवाद है। इसलिए उनकी कथा-रचना में द्वंदात्मक संघर्ष चलता रहता है। संवेदना, संघर्ष और समाधान की स्पष्ट रूपरेखा है इसलिए यह यथार्थ गतिशील है, उनकी रचना सोद्देश्य है। भीष्म जी की प्रतिबद्धताएँ उदार हैं और अभिव्यक्ति शालीन है। इतिहास बोध के कारण वस्तु और चरित्रों के द्वंद्वों, अंतर्विरोधों और विसंगतियों का तर्क तार्किक विश्लेषण चलता है। इसीसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंधों में होनेवाले सतत परिवर्तन उभरते हैं। समसामयिक परिस्थितियों के साथ उनका मेल आसानी से बैठ जाता है। कलात्मक प्रयोजन हेतु लेखक की मान्यताएँ प्रच्छन्न, प्रकट या तटस्थ होती हैं। संघर्ष बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर चलता है। चरित्र में अपने संस्कारों, नैतिक मूल्यों और धार्मिक विचारों के विरुद्ध संवेदना का संघर्ष शुरू होता है और सांप्रतिक जीवन के भौतिक वातावरण में उतरकर समाधान के लक्ष्य तक जाता है। इसलिए सृजन की यह प्रक्रिया स्वाभाविक, मार्मिक और प्रामाणिक लगती है। जीवन के ये चित्र अपने लगते हैं। भीष्मजी ने अनेक प्रसंगों, स्थितियों और संदर्भों में निम्न वर्ग के सामने मध्यवर्ग को खड़ा करके दोनों की मानसिकता का खुलासा किया है। साम्राज्यवाद, सामंतवाद और अब पूंजीवाद से उत्पन्न पेटी बुर्जुआ बनाम सर्वहारा मजदूर वर्ग अपने-अपने ढंग से संघर्ष करते हैं, परिवर्तन को स्वीकारते हैं। भीष्मजी धार्मिक दर्शन, चिंतन और आचरण की विसंगतियों का चित्रांकन करके उसको सारी समस्याओं की जड़ प्रमाणित करते हैं। उसका प्रत्याख्यान करने का आह्वान करते हैं। इसके पीछे उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है, आधुनिक है। अपने विश्लेषण के लिए भीष्म में राजनीतिक चेतना, मानवीय करुणा और सामाजिकता का भरपूर उपयोग करते हैं।

भीष्म की सृजनशीलता का दूसरा पक्ष उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। उनके अनुसार यूरोपीय साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य धर्म निरपेक्ष बना और उसके शिल्पविधान में चुस्ती आई। पर हमारी दृष्टि अपनी होनी चाहिए। अपनी अद्भुत निरीक्षण शक्ति से वे घटनाओं और पात्रों का चयन करते हैं। चरित्रों को संपूर्णता से रचना करते हैं। इसीसे उनकी कहानियों का

ढाँचा, आकृति, उनमें अभिव्यक्त सोच-विचार मानसिकता का पूरा चित्र आ जाता है।

उनकी कहानी कहने की कला गजब की होती है। सरल, सहज रूप से उसका आरंभ होता है, आत्मीय कथन पाठकों को साथ लेकर चलते हैं। भीष्म कहीं से कोई बात उठा लेते हैं और उसे कहानी का रूप दे देते हैं।

भीष्म नई कहानी आंदोलन से जुड़े हैं। उनमें प्रगतिशीलता है, जो वैज्ञानिक समाजवाद पर आधारित है। वे शोषित को मुक्त कराने उसे स्वतंत्र जीवन दिलाने के पक्ष में हैं।

भीष्म जी का पहला कहानी संग्रह 'भाग्यरेखा' (1953) में सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है।

'पहला पाठ' (1956) में उनकी प्रसिद्ध कहानी 'चीफ़ की दावत' संग्रहित है। मध्यवर्ग की बनावटी जिंदगी महत्वाकांक्षा, नौकरशाही का आडंबर के कारण शामनाथ माँ का अपमान करता है। लेकिन अपने चीफ की इच्छा कैसे उन्हें फिर माता की शरण में ले जाता है। इसमें भारतीय संस्कृति, मानवीय संबंध का तिरस्कार है। माँ का आखिर आश्वासन अत्यंत मार्मिक है जो सारा अपमान सहकर भी बेटे के लिए सब करने को तैयार होती है। अन्य कहानियों में मध्यवर्गीय कुसंस्कार अंधविश्वास, कुरीतियों पर प्रहार किया गया है। 'भटकती राख' (1966) में माता-विमाता मार्मिक है। इसमें एक बच्चे के लिए दो औरतों की लड़ाई काफी मनोरंजक है। 'गीता का सहस्त्र नाम' वृद्धावस्था की दयनीयता का चित्र देती है। 'भटकती राख' को पढ़कर पाठक के भीतर एक बहस शुरू हो जाती है। यहाँ कहानी खुद जीवन का भाष्य बन जाती है। अचरज होता है कि वक्त और फैन की हद में आये बगैर आज भी कोई ऐसी सीधी-सादी सहज कहानी कैसे लिख लेता है। ये कहानियाँ आज से बिल्कुल जुड़ी हैं। इन कहानियों में रोजमर्रा यथार्थ का बयान है, जिंदा चरित्र हैं, परिचित आत्मीय, सामान्य कृत है जो बराबर उनसे टकरा जाते हैं। ये यादों में लगातार मँडराती कहानियाँ पाठकों को नए अनुभव प्रदान करती हैं। जिंदगी की गहराई में जाती हैं। जटिल संवेदनाओं और अंतर्धाराओं को पकड़ती हैं।

'चीफ की दावत' के शामनाथ की तरह 'ढोलक' का रामदेव विदेशी के कहनेपर अपने लोकाचार को फिर से अपनाता है। 'पटरियाँ' (1973) की 'अमृतसर आ गया' में आत्मपीड़न और सुविधावाद की झाँकियाँ हैं।

'वाङ्चू' (1978) का वाङ्चू आत्मनिष्ठ है, भारत और चीन दोनों देशों की राजनीतिक परिस्थितियों को नहीं समझ पाता। इतिहास में डूबा यह पात्र अक्षम्य है, फिरभी त्रासद तो है ही। छठा कहानी संग्रह 'शोभायात्रा' (1981) की 'खिलौने' महानगरीय व्यस्तजीवन, युवक-युवतियों का कैरियर मोह को उघाड़ती है तो 'शोभायात्रा' अहिंसा में आडंबर में मध्ययुगीन धर्मांधता को उजागर करती है। 'निशाचर' (1985) में माँ-बेटी के दयनीय जीवन का चित्र है जो रात को कागज की चिंदियाँ बटोरती हैं। 'पाली' (1991) में धर्म मानवीय संवेदना को मिटा देता है। 'झुटपुटा' सिक्ख दंगे की विभीषिका में ड्राइवर का दूध पहुँचाना कायरों में विरत्व का प्रदर्शन है, जो सदा से अभिनंदनीय रहा है। 'डायन' (1998) में अंधविश्वास और बेटी के विवाह का फिक्र का मर्मस्पर्शी वर्णन है। भीष्म की कहानियों में मध्यवर्ग के जीवन की परिस्थितियों और उनकी मनः स्थितियों का मार्मिक व्यंगात्मक चित्रण है। आज मध्यवर्ग पीड़ा, घुटन, बिखराव, भोगवाद, झूठी मान्यताओं और आडंबरों से ग्रस्त हैं। उसके जीवन-मूल्य बुर्जुआ-प्रवृत्ति से अभिभूत हैं, मानवीय संबंध बदल रहे हैं। विसंगत आर्थिक व्यवस्था से निम्न वर्ग शोषित और सर्वहारा हो गया है। ये सभी समस्याएँ भीष्म की कहानियों में मिल जाती हैं। लेकिन उनकी कई कहानियाँ विशेष रूप से चर्चित हैं जिनमें सूक्ष्म मनोभावों और जटिल स्थितियों का अंकन हुआ है-

'मालिक का बंदा', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अंतरात्मा की पुकार' आदि कहानियों में वायवीय आध्यात्मिकता पर व्यंग है। 'मैं भी दिया जलाऊँगा माँ' में जिजीविषा का संदेश है। 'सागमीट' में जग्गा नौकर की विडंबना है। 'पिकनिक', 'मैं गोरी धाय' की आत्म गौरव की कथा है। 'खंडहर' में बुआ की करुण कथा है। 'ओ हरामजादे' में देशप्रेम और पत्नीप्रेम का द्वंद है। पटरियाँ, राधा-

अनुराधा, जख्म, खूँट, त्रास आदि में कलात्मकता के नए रूप मिलते हैं।

साहनी ने कहानियों में संस्मरण, यात्रावृतांत, संस्मरण आदि पद्धतियों का सफल प्रयोग किया। भीष्म की भाषा दैनिक जीवन से ली गई है। वह जीवंत है। उर्दू, पंजाबी शब्द और मुहावरे हैं। सहज-कथन शैली है। चुटकुले लतीफे संयत रूप में मिलते हैं। 'गल्पगुच्छ', 'खूँटे' जैसी कहानियों में असाधारण दृश्य के असाधारण वर्णन मिलते हैं। भीष्म की सृजनशीलता विविधमंडित है।

भीष्म साहनी सफल नाटककार भी हैं। नाटक को पंचम वेद कहा गया है, क्योंकि इसमें लेखक, निर्देशक, रंगकर्मियों का विशेष योगदान रहता है। नाटक के संवाद भी विशिष्ट होते हैं। भीष्म जी कुशल अभिनेता थे। मंच, टीवी पर काम करते मंचीय अनुभव प्राप्त किया। वे जानते थे कि नाटक की प्रस्तुति उसकी सफलता की कुंजी है।

नाटककार सामाजिक जीवन से ही विषयवस्तु और चरित्रों का चयन करता है। यह जरूरी है कि व्यक्ति का सत्य समूह का सत्य बने। इसे भारतीय नाट्यशास्त्र में 'साधारणीकरण' की संज्ञा दी गई है। नाटक की कथा, चरित्र और संवाद सब साधारण दर्शकों के लिए विश्वसनीय हो, उसमें अपनत्व की भावना जगे, यह आवश्यक है। भीष्म का नाट्य-सृजन इस परीक्षा में खरा उतरा है। उन्होंने छह नाटक लिखे हैं- 'हानूश', 'माधवी', 'कबीरा खड़ा बाजार में', 'मुआवजे', 'रंग दे बसंती' और 'आलमगीर'। इनमें अधिकांश की कथावस्तु प्रख्यात है, अर्थात् पुराणों या इतिहास से ली गई है। शेक्सपियर ने भी प्रख्यात कथाओं को उठाकर नाटक लिखे हैं। इसमें एक सुविधा है कि नाटककार को मार्मिक प्रसंग रेडिमेड मिल जाते हैं। उनमें भावात्मकता भरना आसान होता है। चूँकि पहले से दर्शकों की मानसिक तैयारी रहती है, वे सक्रिय हिस्सा लेते हैं, आनंद उठाते हैं। मार्मिक मानवीय स्थिति फौरन सबको जोड़ देती है।

'हानूश' (1978) भारत के आपातकाल में लिखा गया। यह नाटक चेकोस्लोवाकिया की किंबदंती पर आधारित है, जो लगभग सभी देशों में कालों में घटती है। कलाकार को सर्वदा प्रशासन धर्म प्रताड़ित करता रहा है। इतिहास में ऐसी घटनाएँ भरी पड़ी हैं। लोग जानते भी हैं। हानूश एक घड़ीसाज है। अच्छी एक घड़ी बनाकर बादशाह को देता है और बदले में आँखें फूड़वाता है। बड़ी संवेदनशीलता के साथ कलाकार के तनाव, सत्ता का विरोध, स्वतंत्र सर्जनात्मक चेतना से उत्पन्न पीड़ा, संघर्ष, जिजीविषा को सीधे सरल ढंग से भावनात्मक रूप प्रदान किया गया है। विभिन्न मानवीय स्थितियों को मार्मिक लचीले संवादों में संप्रेषित किया गया है। नाटक में व्यक्त करूणा और त्रास सबको अभिभूत करता है। सारे दृश्यविधान, नाटकीय, जीवंत, गत्यात्मक और सांकेतिक होने के कारण अभीष्ट प्रभाव डालते हैं। घड़ीसाज बिगड़ी घड़ी को टटोलते हुए आत्मीयता का अनुभव करता है और वह अत्यंत मर्मस्पर्शी है।

'माधुरी' (1984) की कथा महाभारत से ली गई है। मिथक को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया गया। अतीत वर्तमान में जीवन्त होता है। तत्कालीन परिदृश्य-सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक मान्यताएँ, पुरुषशासन, सामंतवाद, संवेदनहीनता, नारी निर्यातन आदि से उत्पन्न संशय, द्वंद, स्वार्थ-चिंता आदि का अच्छा परिचय मिलता है। नारी-शोषण की यह परंपरा आज कितनी भयानक हो गई हैं। अतीत से वर्तमान की ओर यह नारी-विमर्श चलता है।

'कबीरा खड़ा बाजार में' अत्यंत प्रभावशाली नाटक इसलिए हुआ कि इसमें नाटकीय सृजनशीलता का बहुत अच्छा उपयोग हुआ। प्रचलित सामाजिक धार्मिक क्रूर व्यवस्था का विरोध, वह भी तरल मानवीय और स्त्रीजनोचित करुणा द्वारा हुआ, जो जन-जन का हृदय छू सका। माता का आशीर्वाद, त्याग, पत्नी लोई का प्रेम-स्फुरण नाटकीय घटनाएँ हैं, नाटककार की मौलिक रचना है। लेखक कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व को उभारता है, उसमें दृढ़ता का अभाव करुण परिवेश में डूब जाता है। फिरभी कबीर के शिकायतवाला संवाद, महंत और कोतवाल की ऐंठ और दीनता देखते ही बनती है। कबीर की मानवता और अमनुष्यता का विरोध उभरता

है, तो लेखक को सफलता मिलती है।

'मुआवजे' में हमारी कथा है। समसामयिक जीवन की व्यथा-कथा है। एक आदमी के लिए 10 हजार का मुआवजा मिलता है और लोग तरसते हैं। सुथरा सीखाता है 'अब जब भी दंगा भड़के तुम अस्पताल पहुँच जाना कहना अभी चोट लगी है।' मुआवजा मिलेगा। सरकार प्रशासन अफसरों की बेपरवाही, शरणार्थी और गरीबों की निर्यातना दोनों एक साथ मंच पर हैं। कथा रोचक है, संवाद सीधे, सरस और चुटीले हैं, खुले मंच पर प्रस्तुति मनोरंजक है। बादल सरकार, विजय तेंदुलकर के नाटकों की लोकप्रियता का अनुसरण यही नाटक कर सकता है। नाटक के सारे दृश्य तनावपूर्ण, करुणा, व्यंग्यात्मक हैं। मुआवजा देनेवाले जैसे अपनी जेब से देते हों, गरीब पीड़ित लोग मानो भीखमंगे हों। यहाँ दया की भीख सचमुच करुण है। नाटक देखकर दर्शक सिर धुनकर उठता है। कुछ करने को सोचता है, पर वह भी क्या कर लेगा?

'आलमगीर' ऐतिहासिक नाटक है। दारा का चरित्र संवेदनात्मक है। उसका द्वंद्व, पराजय दुःख देता है। एक और मनुष्यता खड़ी है तो दूसरी ओर दानव दमन! परंतु आखिरकार मनुष्यता की जीत होती है।

भीष्म की नाट्य-साधना नवोन्मेषशालिनी है। मंच हो या टीवी उसकी लोकप्रियता नाटककार का अर्जन है और अंत में- भीष्म साहनी के अनंत पाठकों में से एक दिन कोई उनसे मिला तो पूछ बैठा- "भीष्मजी! हमें लगता है कि आपका रिचर्ड अभी दफ्तर में बैठा है। आपके नथ्यू और मुराद अली गली-कूचों में मिल जाते हैं। आपका जनरैल आज भी राष्ट्रध्वज को सलामी देता है, आपका कबीर बाजार में खड़ा-खड़ा आम लोगों के सामने अपना 'डायलग' झाड़ रहा है, 'आपका विद्यानंद' हजारों भक्तों के आगे अपना दर्शन बघार रहा है। आपकी माधवी घर के कोने में सुबक रही है। आपकी बसंती पप्पू का हाथ पकड़े अपनी बस्ती के मुहाने पर खड़ी है। आपका हानूश बिगड़ी घड़ी को टटोल रहा है, मन ही मन मुसकरा रहा है, आपकी कुंतो और नीलिमा अपने नसीब को रो रही हैं। इनमें से कौन आपका प्रिय 'पात्र' है? भीष्म का जवाब था भैया- ये सब मेरे हैं, लेकिन कोई तुलसी, कोई जनरैल के लिए मेरा मन उचटता है। शायद ये सब मिलकर मेरे मन के 'पात्र' को नहीं बना पाये हैं। मैं उस पात्र की खोज में हूँ जो विषमताओं में संघर्ष करके समता ला सके, स्वच्छंद होकर जीए, अपने लिए नहीं, समाज के लिए जिए।" तब दूसरे ने पूछा- "तब आपके साहित्य की भूमिका क्या है?" भीष्मने कहा- "देखिए साहित्य जीवन में से जन्म लेता है। मानव समाज के संघर्ष, विसंगतियाँ, विडंबनाएँ, अंतर्विरोध सब उसकी परिधि में आते हैं। साहित्य मनुष्य को अकेला नहीं समाज के अंग के रूप में देखता है। साहित्य जीवन की परतों को हमारे सामने खोलता है, हमें सचेत करता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तो धीमी होती है, लेकिन वह चलती ही रहती है।" भीष्म का साहित्य हमें झकझोरता है, इसलिए हम उसे बराबर पढ़ते हैं, और पढ़ते रहेंगे।

संदर्भ सूची

1. भीष्म साहनी, पहला पाठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1961
2. भीष्म साहनी, बसन्ती, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1980
3. भीष्म साहनी, झरोखे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967
4. भीष्म साहनी, कड़ियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1970
5. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973
6. भीष्म साहनी, कुंतो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993
7. भीष्म साहनी, आलमगीर, किताबघर, नई दिल्ली, 1999
8. भीष्म साहनी, हानूश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977
9. भीष्म साहनी, कबीरा खड़ा बाज़ार में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
10. भीष्म साहनी, माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई

दिल्ली, 1984
11. भीष्म साहनी, मेरे भाई बलराज, ईशान प्रकाशन, नोएडा, 1985, पांचवाँ संस्करण, 2003
12. भीष्म साहनी, आज के अतीत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2003
13. विनोद शाही (संपादक) तमस एक पुनर्पाठ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2006
14. विवेक द्विवेदी : भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998